International Journal of Applied Research 2017; 3(3): 378-382

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(3): 378-382
www.allresearchjournal.com
Received: 08-01-2017
Accepted: 13-02-2017

सुरेन्द्र कुमार गुप्ता
हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, हिन्डौन सिटी राजस्थान, भारत

Correspondence
सुरेन्द्र कुमार गुप्ता
हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, हिन्डौन सिटी राजस्थान, भारत

प्रेमचन्द्र की राष्ट्रीय चेतनाः कर्मभूमि के संदर्भ में

सुरेन्द्र कुमार गुप्ता

DOI: https://doi.org/10.22271/allresearch.2017.v3.i3f.10865

सारांश
राष्ट्रीय संचेतना से अनुप्राणित साहित्य को कल्याणकारी और मानवतावादी कहा जाता है क्योंकि यह भेद–भाव से रहित एक उन्मुक्त समाज के निर्माण में सहायक होता है। प्रेमचन्द्र हिन्दुस्तान की नई राष्ट्रीयता और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार हैं। अपने उपन्यासों और कहानियों में उन्होंने देश की पराधीनता के यथार्थ को उसके व्यापक आयामों और जटिलताओं के साथ प्रस्तुत किया। देश की आजादी की समस्या उनके लिए मात्र भावनात्मक अथवा राष्ट्र–प्रेम की समस्या नहीं थी वरन वह आर्थिक शोषण और दमन से जुड़ी हुई थी। ब्रिटिश शासकों की शोषण–नीति से पैदा हुई किसानों की निर्धनता, उनका दयनीय जीवन तथा अमानवीय परिस्थितियों का यथार्थ वर्णन उनकी रचनाओं में मिलता है।
1932 में प्रकाशित 'कर्मभूमि' प्रेमचन्द्र की उत्कृष्ट रचना है। इस वृहत उपन्यास में भारत के स्वाधीनता संग्राम की विस्तृत झाँकी मिलती है। सम्पूर्ण उपन्यास राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित है। राजनीतिक आन्दोलन के अतिरिक्त अछूतोद्वार, जमींदार–किसान–संघर्ष, सूदखोरी, लगान–वसूली जैसे–विषयों का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। युग समाज की विकृतियों, विश्रृंखलाओं और रूढ़ियों के विरूद्व जन चेतना को जागृत करना इस उपन्यास का उद्देश्य है।
प्रेमचन्द्र की राष्ट्रीय–चेतना भारतीय समाज में हर प्रकार की समानता से जुड़ी थी। समाज में सुदृढ़ साम्य–भाव को वे राष्ट्रीयता की पहली शर्त मानते थे। आज फिर विघटनकारी शक्तियाँ बाह्य और आंतरिक अशांति उत्पन्न कर रही हैं। किसान आत्महत्या कर रहे हैं। मजदूर भूखमरी से त्रस्त हैं। इस परिप्रेक्ष्य में उनकी राष्ट्रीय–चेतना समकालीन परिस्थितियों पर जितनी खरी उतरती है, उतनी ही आज की परिस्थितियों पर भी। निस्संदेह प्रेमचन्द्र का साहित्य देशकाल की सीमा में आबद्ध न होकर शाश्वत है। वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उनके साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना नव जागरण का संदेश देती है और आज भी प्रासंगिक है।

कूटशब्दः राष्ट्रीयता, स्वाधीनता–आन्दोलन, सामाजिक विषमता, स्वराज, प्रासंगिक

भूमिका
राष्ट्रीयता एक विशिष्ट भावना है और राष्ट्रीय संचेतना से अनुप्राणित साहित्य जनमानस को आंदोलित कर नैतिक मूल्यों को स्थापित करने का साहस भरता है। उन मूल्यों को महत्त्व प्रदान करने की प्ररेणा देता है, जिसमें हिंसा, घृणा, विश्वासघात जैसी भावनाओं के लिए कोई स्थान न हो। यह प्रेम, भाईचारा, बंधुत्व, सद्भावना, शांति और सौहार्द्र से परिपूर्ण एक उन्मुक्त वातावरण के निर्माण में सहायक होता है, जो किसी भी प्रकार के भेदभाव से मुक्त हो और जिनमें विभिन्न धर्मो को मानने वाले एक साथ निश्चिंत होकर साँस ले सकें। समाज के अन्दर इस तरह के व्यापक उदात्त भावों का संचार करने वाला साहित्य ही सही अर्थों में कल्याणकारी साहित्य होता है। इसी कोटि के साहित्य को मानवतावादी साहित्य कहा जाता है।
समाज और राष्ट्र दोनों एक दूसरे से प्रत्यक्षतः जुड़े हुए हैं। रूढ़ियों एवं विकृत परंपराओं से जर्जर समाज राष्ट्र को पतन के गर्त्त में ढकेल देता है। साहित्य के अंतर्गत राष्ट्रीयता एक ऐसी प्रवृत्ति है, जिसमें राष्ट्र–जन को निर्भीक तेजस्वी और पराक्रमी बनाने के साथ–साथ सही दिशा–निर्देश देने का सामर्थ्य भी निहित होता है।
जब भी कोई राष्ट्र बाह्य या आंतरिक शत्रुओं के चक्रव्यूह में फँसकर अपना संगठित स्वरूप खोने लगता है; साहित्य ही लोक–चेतना में जागृति लाने का गुरूतर दायित्व निभाता है। साहित्यकार मोह निद्रा में डूबे राष्ट्र को जागृति–गान द्वारा संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार राष्ट्रीयता जैसी उदात्त प्रवृत्तियों का पोषण और उन्नयन साहित्य द्वारा ही होता है। प्रेमचन्द हिन्दुस्तान की नई राष्ट्रीयता और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार हैं।

उन्होंने लगभग एक दर्जन उपन्यास और शताधिक कहानियों की रचना की। जिस समय यूरोप में प्रथम विश्वयुद्ध के लिए विस्फोटक स्थिति तैयार हो रही थी, उसी समय प्रेमचन्द का पहला कहानी–संग्रह 'सोजेवतन' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की कहानियों से अंग्रेजी हुकूमत थर्रा उठी। उन्हें भय था कि यह पुस्तक स्वाधीनता आंदोलन के आग में घी का काम करेगी। अपने साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए वे भारत के जन–आंदोलन को ही कुचलना नहीं चाहते थे, बल्कि उसकी अगुवाई करने वाले साहित्य का भी गला घोंट देना चाहते थे, ''श्री रघुपति सहाय 'फिराक' के अनुसार 'सोजेवतन' की पाँच सौ प्रतियों में प्रेमचन्द को आग लगा देने पर मजबूर किया गया। दुनियाभर में जनतंत्र की हिफाजत का ठेके लेने वाले अंग्रेजों ने इस तरह भारतीय जनता के सबसे बड़े लेखक की रचनाओं का स्वागत किया।'' (शर्मा, 2016)

इस घटना के पश्चात् नवाबराय नाम परित्याग कर प्रेमचन्द नाम से उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन की नई शुरूआत की।

नाम बदलने के बावजूद उनकी विचारधारा नहीं बदली। उनका मानस ब्रिटिश शासकों के प्रति विरोध का भाव अभिव्यक्त करने के लिए उपयुक्त समय तलाश रहा था। 'प्रेमाश्रम' और उसके बाद के उपन्यासों में प्रेमचन्द ने देश की पराधीनता के यथार्थ को उसके व्यापक आयामों और जटिलताओं के साथ प्रस्तुत किया। देश की आजादी की समस्या उनके लिए मात्र भावनात्मक अथवा राष्ट्र–प्रेम की समस्या नहीं थी। वरन् वह आर्थिक शोषण और दमन से जुड़ी हुई थी। औपनिवेशिक शासन के प्रति अपने विरोध भाव को व्यक्त करने में उन्होंने कोई समझौता नहीं किया। ब्रिटिश शासन की शोषण–नीति से पैदा हुई, किसानों की निर्धनता, उनकी दयनीय जीवन स्थिति तथा अमानवीय परिस्थितियों का चित्रण उन्होंने 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'कर्मभूमि', 'गोदान' आदि उपन्यासों में किया। जमींदारों और महाजनों को किसानों को लूटने की सारी सुविधाएँ सरकार से प्राप्त थी। उनके माध्यम से ब्रिटिश सरकार अबाध रूप से किसानों तथा किसान–मजदूरों का शोषण करती थी। इसका यथार्थ वर्णन उपर्युक्त उपन्यासों में किया गया है। स्वदेशी आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन आदि आन्दोलनों का चित्रण अनेक कहानियों में मिलता हे।

1932 में प्रकाशित उनके वृहत् उपन्यास 'कर्मभूमि' में भारत के स्वाधीनता–संग्राम की विस्तृत झाँकी मिलती है। सभी वर्गो के पात्र–विद्यार्थी, किसान, अछूत, स्त्रियाँ, शिक्षक, व्यापारी, मजदूर इस जन संग्राम रूपी सैलाब के प्रवाह में बहते चते जाते हैं।

प्रेमचन्द देशभक्ति और प्रजातंत्र को एक–दूसरे से जोड़कर देखते थे। उनके लिए राष्ट्रीय और जनवादी भावनाओं का समान महत्त्व था। यही कारण है कि उनकी राष्ट्रीय चेतना सिर्फ राष्ट्र–प्रेम और देशभक्ति तक सीमित नहीं थी। राजनीतिक समस्याओं के साथ–साथ उन्होंने तत्कालीन सामाजिक–समस्याओं को भी प्रमुखता दी और उन्हें स्वाधीनता आन्दोलन से जोड़कर प्रस्तुत किया। अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उनके साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय–चेतना वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी प्रासंगिक है। वे सही अर्थो में देशभक्ति और राजनीति के आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई हैं।

उद्देश्य

सामान्यः प्रेमचन्द युगप्रवर्त्तक साहित्यकार थे। यद्यपि उनकी रचनाओं का मुख्य स्वर सामाजिक चेतना है, लेकिन उनके साहित्य में राष्ट्रीय भावनाओं की भी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। वे सही अर्थो में स्वाधीनता संग्राम के सैनिक थे। 1932 में प्रकाशित 'कर्मभूमि' भारतीय स्वाधीनता संग्राम के प्रसार की अद्वितीय गाथा है। इस उपन्यास में व्यक्त उनकी राष्ट्रीय भावना पर प्रकाश डालता इस परियोजना '' प्रेमचन्द की राष्ट्रीय चेतनाः कर्मभूमि के संदर्भ में'' का सामान्य उद्देश्य है।

विशिष्टः आज राष्ट्र बाह्य और आंतरिक शत्रुओं के चक्रव्यूह में फँसकर अपना संगठित स्वरूप खोने लगा है। विघटनकारी तत्व अपना सिर उठा रहे हैं। देश की युवा पीढ़ी में भी राष्ट्रीयता की भावना लुप्त होती जा रही है। ऐसी विनाशक और विस्फोटक स्थिति में देश को दिशा देना साहित्य का गुरूतर दायित्व हैं। प्रेमचंद का साहित्य राष्ट्रीय भावनाओं की प्रतिष्ठा की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है। इस पृष्ठभूमि में राष्ट्रीयता संबंधी उनके विचार हमारा मार्गदर्शन करने में पूर्णरूपेण सक्षम हैं। वर्तमान सामाजिक प्ररिपेक्ष्य में उनकी राष्ट्रीय चेतना की प्रासंगिकता दर्शाने का प्रयास करना इस परियोजना का विशिष्ट उद्देश्य है।

अध्ययन पद्धतिः परियोजना के लिए शोध–प्रविधि की द्वितीयक पद्धति का प्रयोग किया गया है। तथ्यों के संग्रह के लिए अध्येय रचनाओं पर किए गए पूर्व शोध–ग्रन्थों, संबंधित पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं एवं इंटरनेट की मदद ली गई है।

विश्लेषण

हिन्दी के सार्वकालिक, सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारों में एक प्रेमचन्द का जन्म 31 जुलाई 1880 को वाराणसी के लमही नामक स्थान पर हुआ था। यह सुखद् संयोग भी कहा जाएगा कि प्रेमचन्द का जन्म और भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना भारतीय इतिहास की समकालिक घटनाएँ है। प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में तत्कालीन समाज का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत किया है। उन्होंने सामान्य जनों को अपना नायक बनाया और सामान्य दैनिक जीवन की समस्याओं को उनके यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया। सामाजिक प्रश्नों को प्रमुखता देते हुए उन्होंने राजनीतिक तथा नारी समस्या के मूल प्रश्नों को भी उठाया। टूटते हुए सामंतवादी समाज और विकसित होती हुई पूँजीवादी व्यवस्था के संधि स्थल पर खड़े होने के कारण उनका महत्त्व और उत्तरदायित्व काफी बढ़ गया था, जिसे उन्होंने बखूबी निभाया। स्वयं प्रेमचन्द के शब्दों में ''हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो–जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे।''(25)

राष्ट्रीय चेतना के अतिरिक्त उन्होंने सांप्रदायिकता, दलित चेतना, नारी चेतना और मध्यम वर्ग पर भी खुलकर लिखा।

प्रेमचन्द का संपूर्ण साहित्य युग–चेतना से अनुप्राणित है। सुपरिचित विचारक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने एक स्थल पर प्रेमचन्द के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए कहा था, प्रेमचन्द जी हिन्दी के प्रथम सर्वोत्कृष्ट मौलिक लेखक थे।

तत्कालीन ज्वलंत मुद्दों की जैसी सशक्त अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में मिलती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस संदर्भ में महेन्द्र मित्तल की ये पंक्तियाँ बिल्कुल सही है–''साहित्यकार अपने युगबोध के अनुसार अपने विचारों को और अपने अनुभवों को वाणी देता है और चला जाता है, किन्तु जब यह वाणी समाज के एक वृहत् अंश के चिंतन का आधार बन जाती है, तब संस्कृति का रूप धारण कर लेती है..... प्रेमचन्द की लोकप्रियता आकस्मिक नहीं है। इसके मूल में भारतीय जीवन और भारतीय आत्मा से उपलब्ध होने वह प्राण–तत्व है, जो प्रेमचन्द को एक विकसित समाज की गौरवपूर्ण संस्कृति को रूप देता है।'' (मित्तल, 2005:73)।

यह निर्विवाद सत्य है कि–साहित्य क्षेत्र में प्रेमचन्द के पदार्पण से हिन्दी कथा–साहित्य में युगांतर उपस्थित हुए। एक महान लेखक सामाजिक जीवन का इतिवृत्तकार होने के नाते युग स्रष्टा तो होता ही है, युग द्रष्टा भी होता है, जो अपने स्पप्न को भविष्य के पर्दे पर संप्रेषित करता है। नव–जागरण की चेतना से संपुष्ट यह जुझारू और निर्भीक साहित्यकार सही मायनों में युग प्रवर्त्तक है।

देश–काल चित्रण उपन्यास का आवश्यक तत्व है। इसके अंतर्गत विभिन्न बाह्य परिस्थितियों का अंकन वांछित होता है। प्रेमचन्द

निर्विवाद रूप से युगद्रष्टा और युगस्रष्टा साहित्यकार हैं। अपनी रचनाओं में उन्होंने युगीन परिस्थितियों का विस्तृत रूप से चित्रण किया है। इस संदर्भ में उन्होंने कहा भी है–''साहित्यकार बहुधा अपने देश–काल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है।''(पृ०–95)।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से 1936 तक की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक–परिवेश की एक–एक तस्वीर को, मानव–जीवन की प्रमुख समस्याओं को तथा समग्रतः समकालीन जीवन को अपनी रचनाओं में उन्होंने अत्यंत स्वाभाविक और सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है।

तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति के अन्तर्गत राष्ट्रीयता एक ऐसा ही तत्व है, जिसे उन्होंने सूक्ष्मता से अनुभव किया और अपनी गहन अंतर्दृष्टि के माध्यम से अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया।

प्रेमचन्द के जिन उपन्यासों में राष्ट्रीय चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है, उनमें 'कर्मभूमि' का स्थान सर्वप्रमुख है। 'कर्मभूमि' प्रेमचन्द द्वारा रचित प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है। स्वाधीनता संग्राम अपने चरम उत्कर्ष पर था और जनता पर पुलिस के अमानवीय अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर थे। बात–बात पर गोलियाँ चल रही थीं और लगान अदा करने का सामर्थ्य न रखनेवाले किसानों को बागी कह कर दण्डित किया जा रहा था। मानवता को शर्मिन्दा करते हुए महिलाओं पर दिनदहाड़े अत्याचार किए जा रहे थे। इन परिस्थितियों को देखकर प्रेमचन्द का हृदय आहत हो उठा और नागरिकों को कर्म करने की प्रेरणा देने के लिए 1932–33 में उन्होंन 'कर्मभूमि नामक उपन्यास की रचना की। इस वृहत् कृति में उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को नए रूप में प्रस्तुत किया है।

'कर्मभूमि' प्रेमचन्द की उत्कृष्ट रचना है। इसमें युगीन परिस्थितियों का अत्यन्त सजीव चित्रण हुआ है।

सम्पूर्ण उपन्यास राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित है। प्रेमचन्द का मानना था कि राजनीतिक आन्दोलन की सफलता के लिए सामाजिक सुधार अपेक्षित है और स्वराज प्राप्ति के लिए जनता का शक्ति सम्पन्न होना आवश्यक है। सामाजिक जागृति के लिए उन्होंने सभी कुरीतियों के अंत पर जोर दिया। इसके लिए वे सुधारवादी तरीकों को अधिक उपयुक्त मानते थे।

इस उपन्यास में लेखक ने मुख्यतः राजनीतिक समस्याओं को ही उठाया है। देश की तत्कालीन परिस्थिति के प्रभावस्वरूप उन्होंने राजनीतिक आन्दोलनों के अतिरिक्त अछूतोद्धार, जमींदार–किसान–संघर्ष, सूदखोरी आदि विषयों का भी यथार्थ चित्रण किया है।

कथानक का मूल आधार राजनीतिक समस्याओं से संबंधित है। राजनीतिक चेतना के अंतर्गत ही लेखक ने सामाजिक प्रश्नों को भी उठाया है। उपन्यास के पूर्वार्द्ध में साधारण रूप से आरंभ होने वाली क्रान्ति अंत आते–आते एक विशाल स्वरूप धारण कर लेती है।

नगर की क्रांति राजनीतिक से संबंधित है और ग्रामीण आन्दोलन का संबंध सामाजिक विषमता से है। राजनीतिक–क्रांति और सामाजिक क्रांति दोनो अंत में सफल होती है। कथा से संबंधित अधिकांश घटनाएँ क्रांति के ही इर्द–गिर्द केन्द्रित दिखाई देती है और उनमें हड़ताल, दमन आदि का अधिक समावेश है। मंदिर में अछूतों का प्रवेश, महंत का धार्मिक पाखण्ड, राजनीतिक जागृति, सरकारी दमन आदि विषयों का कथा की मुख्यधारा में सुन्दर समन्वय है।

'कर्मभूमि' के कथानक–निर्माण में प्रेमचन्द को पर्याप्त सफलता मिली है। लेखक ने बड़ी कुशलता से कथानक को दो विभिन्न धाराओं को मिला दिया है। देश–सेवा के विशाल रंगमंच पर सभी पात्रों का सुखद मिलन होता है।

उपन्यास का नायक अमरकांत क्रांति का सूत्रधार है। अन्य पात्र भी किसी न किसी रूप में सामाजिक जागृति में अपना योगदान देते हैं। उपन्यास के अंत में सामूहिक क्रांति की विजय महत्त्वपूर्ण सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन की सूचक है। प्रेमचन्द की मान्यता है कि राजनीतिक आन्दोलन की सफलता के लिए सामाजिक सुधार और सामाजिक जागृति के लिए सामाजिक कुरीतियों का अंत होना आवश्यक है।

इन विचारों का प्रत्यक्ष प्रतिपादन 'कर्मभूमि' में हुआ है। यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि विश्वंभर नाथ उपाध्याय का निम्नलिखित कथन 'कर्मभूमि' के संदर्भ में भी अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है–''सामाजिक सच्चाईयों का जो विवरण और चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यासों में मिलता है, उनकी विशेषता यह है कि वह हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का कलात्मक प्रतिबिंबन है और इसलिए उसका स्थायी महत्त्व है।'' (उपाध्याय, 2005:61)।

अन्य उपन्यास

प्रेमाश्रमः 'प्रेमाश्रम' का दूसरा प्रौढ़ उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् 1922–23 में हुआ थां इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने मुख्यतः किसानों और जमींदारों से जुड़े प्रश्नों को उठाया है।

रंगभूमिः रंगभूमि का प्रकाश 'प्रेमाश्रम' के पश्चात् हुआ। इसका प्रकाशन काल 1924–25 है। इसका फलक 'प्रेमाश्रम' से भी अधिक विस्तृत था। इस उपन्यास में भारत के विविध धर्मो और वर्गों का विस्तृत चित्रांकन किया गया है। इसका रचना काल और गाँधीजी का सत्याग्रह आन्दोलन समकालीन घटनाएँ थी। यह उपन्यास गाँधीवादी विचाराधारा से प्रभावित है। उपन्यास का नायक सूरदार भारतीय ग्रामीण जीवन का प्रतिनिधित्व करता है तथा गाँधीजी के आदर्शों से पूरी तरह से प्रभावित है।

गबनः 'गबन' में प्रेमचन्द ने पहली बार नारी समस्या को व्यापक भारतीय परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा है और उसे तत्कालीन भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन से भी जोड़ा हैं। उपन्यास के उत्तरार्द्ध में लेखक ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम की झाँकी प्रस्तुत की है।

गोदानः 'गोदान' में समकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ अपेक्षाकृत कम हैं और जो हैं, वह भी मुख्यतः वैचारिक स्तर की प्रजातंत्रीय व्यवस्था की असफलता, साम्यवादी विचारों पर आधारित श्रमिक हड़ताल, वोट, रायसहाब सूर्यप्रताप सिंह की निर्वाचन में प्रयुक्त हथकंडेबाजियाँ, आंग्ल सत्ताधारियों और अफसरों की अंधभक्ति, भेंट, रिश्वत, भ्रष्टाचार, उच्च वर्ग तथा रायसहाब और खन्ना का बतौर फैशन सत्याग्रह संग्राम में शामिल होना, यश–अर्थ–लोभ में जेल जाना आदि ऐसे ही कुछ संकेतक हैं।

कहानियाँ

प्रेमचन्द की राष्ट्रीय चेतना की सशक्त अधिव्यक्ति उनकी कहानियों में भी हुई है। उनकी कहानियाँ अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य को परखते हुए राष्ट्रीयता का स्वर प्रेमचन्द के प्रथम कथासंग्रह 'सोजेवतन' में व्यक्त हुआ है। इसकी पाँच में से चार कहानियों में तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। ये कहानियाँ भावनात्मक स्तर पर राष्ट्रप्रेम को प्रोत्साहित करने की कोशिश का परिणाम हैं।

प्रेमचन्द नाम से स्वाधीनता आन्दोलन से संबंधित उनकी पहली कहानी 'उपदेश' थी। सन् 1917 में प्रकाशित इस कहानी से 1935 में प्रकाशित 'कातिल की माँ' तक की कहानियों के स्वय विविधतापूर्ण है। उनकी कुछ कहानियाँ स्वाधीनता–संग्राम या उससे संबंधित कार्यक्रमों पर लिखी गई हैं। कुछ कहानियों का कोई पात्र वास्तविक स्वाधीनता सेनानी है तो कुछ कहानियों में स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान घटी अलग–अलग घटनाओं को विषय बनाया गया है। कुछ कहानियों के विषय अलग हैं, लेकिन

संदर्भ स्वाधीनता आन्दोलन है। इन कहानियों में स्वतंत्रता संबंधी प्रेमचन्द के विचारों का स्वाभाविक विकास तो है ही, स्वाधीनता आन्दोलन का समर्थन भी है। इस संदर्भ में राजीव रंजन गिरि का यह कथन द्रष्टव्य है–''अत' साफ तौर पर कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द साहित्य के जरिए देश के स्वराज्य आन्दोलन में अपनी भूमिका अदा कर रहे थे।'' (गिरि, 2005:92)।

'सोजेवतन' का मुख्य विषय यदि देशभक्ति है तो 'उपदेश' में राष्ट्रीय आन्दोलन पर विचार किया गया है। इस प्रकार प्रेमचन्द की कथा–यात्रा देशभक्ति से प्रारंभ होकर राष्ट्रवाद तक पहुँचती है। देशभक्ति से राष्ट्रवाद की इस यात्रा में उनका लेखन अनेक सोपानों से गुजरा है।

'उपदेश' कहानी में राष्ट्रीय आन्दोलन की आलोचना की गई है। दूसरी तरफ 'आहुति' की नायिका रूपमणि है, जो स्वराज की मांग के औचित्य पर सवाल उठाती है।

इससे संबंधित रचना प्रक्रिया का एक सोपान 'शतरंज के खिलाड़ी' है। इस कहानी में स्वाधीनता और स्वराज्य की सामयिक घटनाओं को सीधे–सीधे नहीं उठाया गया है। इसमें स्वाधीनता के प्रश्न को पतनशील सामंतवादी युग के संदर्भ से जोड़कर संवेदना और विचर के गहरे स्तरों को स्पर्श किया गा है। नरेन्द्र मोहन के शब्दों में ''यह ह्रासशील सामंतकाल का वह करूण अध्याय है जब व्यक्तिगत वीरता तो बहुत थी, पर राजनीतिक भावों का पूरी तरह अधःपतन हो चुका था। भंयकर राजनीतिक दशा तथ मीर और मिर्जा की लत को आमने–सामने रखकर प्रेमचन्द ने इस अधःपतन को उघाड़कर रख दिया है'' (मोहन, 2005:131–132)।

राष्ट्रीय भाव–धारा पर लिखी हुई कहानियाँ, प्रेमचन्द की सुंदर औ कलात्मक कहानियाँ है। इन कहानियों में राष्ट्रीय भावों का समर्थन व्यंग्यात्मक शैली में हुआ है। प्रेमचन्द ने जहाँ एक ओर पात्रों के मनोभावों में पैठकर विदेशी वस्त्र का बहिष्कार, नशाखोरी की खिलाफत, खादी और चरखे का समर्थन और सत्य–अहिंसा की प्रतिष्ठा करने की चेष्टा की है, वहाँ झूठे राष्ट्रवादियों की पोल खोलकर सुंदर और व्यंग्यात्मक ढंग से मानव–चरित्र की गंभीरता, निष्कपटता और सत्य का पाठ बढ़ाया है।

निबंध

प्रेमचन्द की प्रतिभा बहुआयामी थी। एक संवेदनशील एवं प्रबुद्ध कथाकार होने के साथ–साथ वे एक सजग, सक्रिय एवं समर्थ पत्रकार भी थे। उनकी पत्रकारिता में वैचारिकता, सर्जनात्मकता एवं सामाजिक सूचनात्मकता का अपूर्व समन्वय है।

एक पत्रकार के रूप में उन्होंने अपनी प्रखर वैचारिकता, स्पष्ट नीति और निर्भीकता का परिचय देते हुए असहयोग आन्दोलन तथा राष्ट्रीय मुक्ति अभियान को वैचारिक शक्ति देने में सराहनीय योगदान दिया। मार्च 1930 ई० में प्रेमचन्द ने 'हंस' का प्रकाशन संपादन आरंभ किया।

प्रेमचन्द ने 'जागरण' का भी संपादन किया। 'हंस' और 'जागरण' दोनों ही पत्रों में उनकी राजनीतिक और सामाजिक पत्रकारिता का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है। एक जागरूक पत्रकार के रूप में 'जमाना', 'हंस' और 'जागरण' में छपे लेखों में उन्होंने स्वधीनता आन्दोलन की गति, शक्ति और असंगतियों का विश्लेषण भी किया।

निष्कर्ष

कर्मभूमि सहित प्रेमचन्द के सम्पूर्ण साहित्य में स्वाधीनता का व्यापक अर्थ व्यक्त हुआ है। किसानों, स्त्रियों और दलितों की पराधीनता को उन्होंने स्वाधीनता आन्दोलन से जोड़ा। यह उपन्यास आम जनता के जीवन संघर्ष का ही नहीं मुक्ति–संघर्ष का भी आख्यान है।

प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में सामाजिक विषमताओं, वर्ण–संघर्ष, आर्थिक असंतुलन, अंधविश्वासों और कुरीतियों की तीव्र भर्त्सना की। उपन्यास में अनेक ऐसे चरित्र है : जो इन सामाजिक कुरीतियों से संघर्ष करने के साथ–साथ उन शक्तियों से भी मुकाबला करते हैं, जो उनका शोषण करते हैं। उनकी अन्य रचनाओं में भी गुलामी से लड़ती जनता के सजीव चित्र है।

प्रेमचन्द मानवधर्म और मानवता के पुजारी थे। इस मानवता का गहरा रंग उनकी साहित्य कला पर भी चढ़ा हुआ है।

वे सिर्फ साहित्यकार और पत्रकार नहीं थे। वे कलाकार और विचारक भी थे। उनकी विचारधारा आर्य समाज, गाँधीजी और टॉल्स्टॉय से प्रभावित थी। नारी उद्धार सामाजिक–रूढियों से मुक्ति संबंधी विचार आर्य समाज से प्रेरित हैं। सत्य, अहिंसा, कर्मठता, मानव–प्रेम आदि का ज्ञान उन्होंने टॉल्स्टॉय से सीखा। उसी प्रकार उनके साहित्य में वर्णित भारतीय स्वाधीनता संग्राम पर गाँधीजी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इन्हीं विचारधाराओं के समन्वय ने उनकी गहरी अंतदृष्टि का निर्माण किया, जिसके माध्यम से वे तत्कालीन परिस्थतियों का चित्रण करने में सक्षम रहे।

'कर्मभूमि' और अन्य साहित्य में व्यक्त प्रेमचन्द की राष्ट्रीय चेतना भारतीय समाज में हर प्रकार की समानता से जुड़ी थी। समाज में सुदृढ़ साम्यभाव को वे राष्ट्रीय की पहली शर्त मानते थे। अपने साहित्य में उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त भेद–भाव के विभिन्न रूपों का यथार्थ चित्रण करने के साथ–साथ अपने विवेचनात्मक लेखों में उन पर तीखा प्रहार भी किया था। वे तत्कालीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था को विदेशी शासन से अधिक घातक समझते थे।

प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय राष्ट्रवाद की अनेक कमजोरियों को भी उजागर किया। ये कमजोरियाँ थी–राष्ट्रवादियों की कथनी और करनी में अंतर, अंग्रेजी सत्ता से सांठ–गांठ, समझौतावादी और ढुलमुल नीतियाँ, मानसिक गुलामी इत्यादि। आम जनता की ओर से बार–बार यह सवाल उनकी कहानियों में उठाया जाता है कि–आजादी के बाद किसकी कल्पना का स्वराज होगा? 'गबन' में देवीदीन यही प्रश्न पूछता है– ''साहब, सच बताओं जब तुम सुराज का नाम लेते हो तो उसका कौन का रूप तुम्हारी आँखों के सामने आता है? तुम भी बड़ी–बड़ी तलब लोगे, तुम भी अंग्रेजों की तरह बंगलों में रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, अंग्रेजी ठाठ–बाट बना घूमोगे? इस सुराज से देश का क्या कल्याण होगा? (प्रेमचन्द, 166–167)। देवीदीन द्वारा उठाया गया यह प्रश्न आज भी अनूत्तरित है और उसकी आंशका अक्षरशः सत्य साबित हुई है।

इस वर्ष 'भारत छोड़ो आन्दोलन' की 75वीं वर्षगांठ मनायी जा रही है। लेकिन प्रेमचन्द के स्वराज का सपना वहीं का वहीं है। सांप्रदायिकता का जहर पूरे समाज पर छाया हुआ है। किसान आत्महत्या कर रहे हैं। मजदूर भूखमरी से त्रस्त हैं। प्रेमचन्द के सपनों का भारत बर्बादी के कगार पर खड़ा है। विघटनकारी शक्तियाँ बाह्य और आंतरिक अशांति उत्पन्न कर रही हैं। अलगाववाद और आतंकवाद जहाँ देश की अखण्डता के लिए खतरा बने हुए हैं, वहीं बदलती हुई परिस्थितियों के साथ राष्ट्रीयता की परिभाषा भी बदल रही है। आज की युवा पीढ़ी राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की प्रत्यक्षदर्शी नहीं है। उसने ब्रिटिश शासकों के दमन चक्र का ह्रदय–विदारक मंजर नहीं देखा है। उनकी राष्ट्रभक्ति मात्र भारत–पाकिस्तान क्रिकेट मैच तक सीमित रह गई है। राह चलते लोगों पर हिंसा प्रदर्शन करना और सोशल मीडिया पर भला–बुरा कहना आज देशभक्ति के मायने बन गए हैं। जिन आदर्शो और मूल्यों को लेकर स्वराज की स्थापना हुई थी, वे मूल्य अपना महत्व खोते जा रहे हैं।

उत्तर आधुनिक बौद्धिकता ने भारतीय बुद्धिजीवी, लेखक और पत्रकार को भी प्रभावित किया है। स्वदेशी की भावना, जनता के प्रति संवेदना और अपनी जड़ों की पहचान जैसे भाव कहीं खो गए हैं। भारतीयता की पहचान बनाए रखने के लिए प्रेमचन्द की राष्ट्रीयता संबंधी रचनाओं का आस्वादन आज समय की मांग है।

मैनेजर पाण्डेय का यह कथन इस संदर्भ में बिल्कुल सार्थक है– '' प्रेमचन्द के कथा साहित्य का मुख्य उद्देश्य है– भारतीय समाज और साहित्य में जनतंत्रीकरण की प्रक्रिया को तेज करना और मजबूत बनाना। आज जबकि वह प्रक्रिया दिग्भ्रमित और बिखराव की स्थिति में है, तब जिन कथाकारों और पाठकों की चिंता समाज और साहित्य के जनतंत्रीकरण से जुड़ी है उनके प्ररेणा स्त्रोत प्रेमचन्द आज भी हैं और कल भी रहेंगे'' (पांडेय, 2006:37)।

प्रासंगिता ही वह कसौटी है जो किसी भी रचना या विचारधारा को महत्वपूर्ण, उपयोगी तथा सार्थक बनाती है। कोई भी पूर्ववर्ती रचना या विचारधारा तभी प्रासंगिक स्वीकार्य होती है, ज बवह समकालीन जीवन और चिंतन को प्रभावित करती है। 'कर्मभूमि' में व्यक्त प्रेमचन्द की राष्ट्रीय चेतना इसी कोटि में आती है। राष्ट्रीयता से संबंधित उनके विचार आज भी सार्थक और उपयोगी बने हुए है।

इस संदर्भ में विश्वंभर नाथ उपाध्याय ने लिखा है– ''किसी युग–प्रवर्त्तक और वह भी यर्थाथवादी युग–प्रवर्त्तक साहित्यकार और साहित्यिक पत्रकार की अप्रासंगिकता का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि प्रेमचन्द के साहित्य में वे विचार बीज रूप में और कहीं–कहीं पल्लवित रूप में उपलब्ध हैं जो आज के सामाजिक कायाकल्प के लिए प्रेरक है'' (उपाध्याय, 2005:57)।

कर्मभूमि के संदर्भ में उनकी राष्ट्रीय चेतना समकालीन परिस्थितियों पर जितनी खरी उतरती है, उतनी ही आज की परिस्थितियों पर भी। निस्संदेह राष्ट्रीय और सामाजिक दृष्टि से ऐसा जागरूक लेखक कभी भी अप्रासंगिक नहीं हो सकता।

संदर्भः

1. उपाध्याय, विश्वंभरनाथ. (2005). 'कालातीत और सार्वभौम यथार्थ का चित्रण', कथा सम्राट–प्रेमचन्द, भारत सरकार, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय (पृ० 57–65)
2. गिरि, राजीव रंजन. (2005). 'स्वाधीनता आन्दोलन और प्रेमचन्द', कथा सम्राट–प्रेमचन्द, भारत सरकार, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय (पृ० 89–99)
3. पांडेय, मैनेजर. (2006). 'प्रेमचन्द आज भी लोकप्रिय क्यों?', प्रेमचन्द के आयाम–सं० ए० अरविंदाक्षन नयी दिल्ली, राधाकृष्ण (पृ० 30–37)
4. प्रेमचन्द. (2013). कुछ विचार, इलाहाबाद, लोक भारती प्रकाशन
5. प्रेमचन्द. (2014). गबन, पटना, अनुपम प्रकाशन
6. मिततल, महेन्द्र. (2005). 'आम आदमी का सच्चा मसीहा', कथा सम्राट–प्रेमचन्द, भारत सरकार, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय (पृ० 65–73)
7. मोहन, नरेन्द्र. (2005). 'विकास प्रक्रिया', कथा सम्राट–प्रेमचन्द, भारत सरकार, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय (पृ० 129–138)
8. शर्मा, राम विलास. (2016). प्रेमचन्द और उनका युग, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन